SWAR SINDHU: NATIONAL PEER-REVIEWED/REFEREED JOURNAL OF MUSIC
A UGC CARE LISTED JOURNAL
ISSN 2320-7175 (O) | VOLUME 12, ISSUE 03, DECEMBER, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org

लोक संगीत एवं वर्ण व्यवस्था में अंत:संबंध

SHREYA PANDAY[1], DR. RAMSHANKAR[2]

[1]Research Scholar, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
[2]Assistant Professor, Vocal Department, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

सार

प्रस्तुत शोध पत्र में लोक संगीत और वर्ण व्यवस्था को प्राचीन समय से लेकर वर्मान समय तक की व्यवस्था के अंतः संबंध का विश्लेषण किया गया है तथा मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध होने के कारण केवल लोक संगीत ही नही अपितु शास्त्रीय संगीत से सम्बंधित प्राचीन से वर्तमान में आये प्राकृतिक परिवर्तन के बारे में भी चर्चा की गई है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न जातियों और वर्णों के लोक संगीत में विशेषताएँ और विषय-वस्तुएँ भिन्न होती हैं। उदाहरण स्वरूप, शूद्र वर्ग के संगीत में ग्रामीण जीवन की सरलता और संघर्ष को प्रतिबिंबित किया गया है, जबकि ब्राह्मणों के संगीत में धार्मिक अनुष्ठानों और उच्च संस्कारों का वर्णन होता है।

सूचक शब्द- *प्रकृति, स्वाभाविकता, आलंकारिकता, कृत्रिमता ।*

प्रस्तावना

किसी भी देश का लोक संगीत उस देश के शास्त्रीय संगीत व् संकृति से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। संगीत के सात्विक भाव का निदर्शन लोक-संगीत के द्वारा ही भली-भाँती किया जा सकता है। लोक-संगीत को सहज-संगीत भी कहा जा सकता है, क्योकि यह अनुकरण मात्र से ही सीखा जा सकता है । किसी भी प्रकार का शास्त्रीय बंधन व् नियम न रहने के कारण यह जनसाधारण के लिए भी सुलभ है क्योंकि इसमें शास्त्रीय संगीत के नियमों का बंधन नहीं होता। प्राचीन समय से मानव का प्रकृति के साथ गहरा संबंध रहा है और इसका प्रभाव उसके संगीत पर भी पड़ा। जब मनुष्य प्रकृति के निकट था, तब संगीत में स्वाभाविकता अधिक थी, लेकिन जैसे-जैसे वह कृत्रिमता की ओर बढ़ा, संगीत भी अलंकरणों से समृद्ध होता गया। इस प्रकार के परिवर्तन का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर अधिक देखा गया, लेकिन लोक संगीत ने अपने सरल और स्वाभाविक स्वरूप को लंबे समय तक बनाए रखा। भारतीय लोक-संगीत के बारे में विचार करते समय सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिए कि लोक-संगीत के गायन-वादन की प्रणाली प्राचीन या अर्वाचीन, अन्य देशों की भाँती ही है या भिन्न है। यूरोप, भारतवर्ष तिब्बत अन्य कुछ देशों को छोड़कर अन्य सभी देशों में करीब करीब लोक संगीत के ही गायन की प्रथा है। शास्त्रीय संगीत के नाम से वह उनकी अपनी गायन की कोई प्रणाली ही नही है।

प्राचीन काल से ही मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहने के कारण उसकी हर क्रिया प्राकृतिक थी; वह प्रत्येक परिस्थिति में प्रकृति को ही देखा करता था । वही प्रभाव उसके संगीत पर भी था। उस समय के संगीत में स्वाभाविकता अधिक थी, अलंकारिकता कम । धीरे-धीरे मानव प्रकृति पर विजय पाने लगा और प्रकृति के उतना करीब नहीं रहा, जितना पहले था ; अतः मानव प्रकृति के साथ घनिष्ठता कम होने लगी । अब मानव स्वाभाविकता को छोड़ कृत्रिमता की ओर जाने लगा। इसका प्रभाव उसके संगीत पर भी पड़ा, उसने इसे भी अलंकृत करने का प्रयास किया और अपने को स्वतंत्र घोषित करना चाहा। इस प्रकार के परिवर्तन ने नई धाराओं को जन्म दिया। लोक गीतों में अक्सर प्रकृति, प्रेम, भक्ति और जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन होता है। "वाल्मीकि रामायण" और "श्रीमद्भागवत" में राम और कृष्ण के जन्म के अवसर पर गाए गए गीतों का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा, कृषि कार्यों और दैनिक गतिविधियों के दौरान स्त्रियाँ सामूहिक रूप से गीत गाती थीं, जो न केवल मनोरंजन का साधन था, बल्कि उनके श्रम को हल्का करने का भी एक माध्यम था।[1]

इस प्रकार परिवर्तन का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर अधिक देखा जाता है। पहले संगीत के द्वारा जनसाधारण के उपरान्त पेड़, पशु, पक्षी, आग, पानी इत्यादी को वश में कर आनंद देना अधिक पाया जाता था। अतः यह कह सकते हैं कि संगीत की सात्विक प्रकृति अथवा हृदय के अंर्तआगत उठे हुए भावों को ठीक उसी प्रकार से व्यक्त करने का माध्यम जब संगीत को बनाया जाता है। देना अधिक पाया जाता था। आज तक संगीत जगत में कहावत के रूप में कहा जाता है कि तानसेन ने दीप जलाए किन्तु मानव का अब प्रकृति के साथ इतना सम्बन्ध न रहने के कारण ऐसी बातें केवल जनश्रुति के रूप में ही रह गई हैं। प्राचीन खण्डहरों की भाँति इस प्राचीन संगीत की एक परम्परा का संग्रह अगर

कहीं भी मिल सकता है, तो केवल लोक-संगीत में। आज भी पर्वों तथा सामाजिक अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में प्राकृतिक वस्तुओं का ही वरन पाया जाता है। औरतें वही गाती हैं जो उस अवसर पर होता रहता है जैसे विवाह के समय औरतें सुहाग गाती है

अई चिरई जे सोई गये, चिनगुन सोई गये,
सोई गये सहर सब लोग, नाजोक सोहाग बाढ़े

अतः यह कह सकते हैं कि संगीत की सात्विक प्रकृति अथवा हृदय के अंतर्गत उठे हुए भावों को ठीक उसी रूप में व्यक्त करने का माध्यम जब संगीत को बनाया जाता है, तब उसे लोक संगीत या सहज संगीत कहाँ जाना चाहिए। भारतवासियों का जीवन सदा संगीतमय रहा है। शायद ही कोई ऐसी जाती होगी जिसके जीवन पर संगीत का प्रचुर प्रभाव न पड़ा हो और खासकर भारत का संगीत एक ओर प्रकृति और दूसरी ओर अध्यात्म दोनों पर आधारित है। भारतीय संगीत के लिए ऐसा भी कहा जाता है कि साहित्य से ब्रह्म का ज्ञान और संगीत से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। सदा यहाँ भिन्न भिन्न पर्वों और अवसरों पर गायन, वादन व नर्तन की प्रथा रही है। वैदिक युग में भी पर्वों के अवसरों पर मनोहर गाथाओं के गाने का निर्देश वैदिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है। 'मैत्रायणी संहिता' में विवाह के अवसर पर गाथा गाने की विधि उल्लिखित है। 'पारस्कर गृहसूत्र' में विवाह के अवसर पर और 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में सीमन्तोन्नयन के समय वीणा पर गाथा गाने का प्रचलन निर्दिष्ट है। अतः विवाह के समय वैदिक काल से ही स्त्रियां सुंदर गाथाएं गाती थी और वह परंपरा आज भी अक्षुण्ण रीति से चली आ रही। 'वाल्मीकि रामायण' में राम जन्म के समय तथा श्रीमद् भागवत में कृष्ण जन्म के अवसर पर स्त्रियों के एकत्र होकर मनोरंजक सामयिक गीतों के गाने का स्पष्ट वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं मेहनत मजदूरी करने जैसे- चक्की पीसने, धान कूटने, ढेंकी कूटने, खेती, निराने आदि के समय जिस प्रकार स्त्रियां झुंड बांधकर, गीत गाकर अपनी थकावट हल्की करती है। प्राचीन काल में भी ठीक इसी प्रकार होता था।

धार्मिक एवं सामाजिक गीतों में वर्ण आधारित भेदभाव

भारतीय संगीत की व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय वर्ण-व्यवस्था प्राचीन गाथा - देव और असुरों पर आधारित है। पौराणिक कथाओं के आधार पर यह देखा जाता है इंद्र या अन्य देवी-देवता स्वर गान नहीं करते थे प्राचीन काल में भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था, और इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा। शास्त्रीय संगीत को उच्च वर्णों, विशेषकर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच प्रतिष्ठा प्राप्त थी, जबकि लोक संगीत निम्न वर्णों के लोगों के बीच अधिक प्रचलित था। कृष्ण का उदाहरण लें तो, जब वे अपने यौवन में गोकुल में रहते थे, तब बांसुरी बजाकर लोक संगीत का हिस्सा बनते थे। परंतु जब वे मथुरा और द्वारिका के राजमहल में पहुंचे, तो उन्होंने लोक संगीत से दूरी बना ली।[2] शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति के विषय में कुछ विद्वानों का यह मत कि लोक-संगीत से ही शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति हुई है इस प्रकार से देखें तो हमारे देश में प्रारंभ से ही संगीत की दो प्रणालियाँ रही हैं- 1-शास्त्रीय संगीत, 2- लोक-संगीत। इन प्रणालियों का आधार पुनः भारतीय वर्ण-व्यवस्था ही रही है। ब्राह्मण वर्ग द्वारा गाए जाने वाले धार्मिक गीतों में शास्त्रीयता और पवित्रता का अद्वितीय स्थान है। धार्मिक अनुष्ठानों में गाए जाने वाले गीतों का स्वरूप और शैली उच्च वर्ण की सामाजिक स्थिति को दर्शाते हैं। इसके विपरीत, निम्न वर्णों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीत सामाजिक संघर्ष और जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, भक्ति गीत ब्राह्मणों और वैश्य वर्ग के धार्मिक जीवन को अभिव्यक्त करते हैं, जबकि खेतिहर मजदूरों और शिल्पकारों द्वारा गाए जाने वाले गीत रोज़मर्रा की परेशानियों और संघर्षों को प्रकट करते हैं।[3] जैसा की आजकल कहीं-कहीं देखा भी जाता है कि निम्न वर्ण (धोबी, अहीर, चमार आदि) के गीत, नृत्य पाए जाते हैं जबकि आज भी कहीं-कहीं उच्च वर्ग के लोगों में इस प्रकार के जाति के गीत नहीं सुनाई पड़ते केवल विवाह आदि उत्सवों पर गीत गाती है लोक संगीत समाज के सभी वर्गों के जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है, लेकिन इसका स्वरूप और शैली वर्ण के अनुसार भिन्न होती है। जहाँ उच्च वर्गों का संगीत शास्त्रीय और संरचित होता है, वहीं निम्न वर्गों का संगीत सरल और जीवन के संघर्षों को दर्शाने वाला होता है।[4] स्त्रियों की तुलना में आज भी लोकगीत गाए जाने में पुरुषों की संख्या काफी कम है इसका कारण यह भी समझ सकते हैं क्योकि वैदिक काल से ही स्त्रियों को चाहे वे किसी भी वर्ण की हों, निम्न ही समझा गया है। वेद पढ़ना इत्यादि बातों का अधिकार उनको नही दिया गया था। महाभारत-काल में कृष्ण ने क्षत्रिय वंश के होते हुए भी बांसुरी बजाई और रासलीला के नृत्य तथा गीतों में सम्मिलित हुए किन्तु जब कृष्ण मथुरा से द्वारिका गए तो उसके बाद कोई ऐसा विवरण नहीं मिलता कि उन्होंने पुनः बाँसुरी-वादन या रास

आदि में भाग लिया हो। कहने का तात्पर्य यह है की जब तक वे यादवों की टोली में रहते थे, तब तक तो उनके नृत्य-गीत आदि में सम्मिलित होते रहे, किन्तु जैसे ही वे राजगद्दी पर गए, वैसे ही उन्होंने लोक-संगीत से अपने को थोडा ऊपर उठा लिया।

वाद्य यंत्रों पर वर्ण व्यवस्था का प्रभाव

देव गाथा से सम्बन्ध रखने के कारण भारतीय संगीत के प्रारम्भ से ही दो अंग रहे - शास्त्रीय संगीत व् दूसरा लोक-संगीत। शास्त्रीय संगीत जनसाधारण को न सुनने में ही सुलभ था न सिखने में ही। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन शास्त्रीय संगीत मंदिरों का संगीत रहा। वर्ण व्यवस्था का प्रभाव लोक संगीत के वाद्य यंत्रों पर भी दिखाई देता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के लोग शास्त्रीय वाद्य यंत्र जैसे वीणा और सितार का प्रयोग करते थे, जबकि निम्न वर्ग ढोल, नगाड़ा और तंबूरा जैसे वाद्य यंत्रों का प्रयोग करते थे। उच्च वर्णों के संगीत वाद्यों को शुद्धता और धार्मिकता से जोड़ा गया, जबकि निम्न वर्णों के वाद्य यंत्रों का प्रयोग सामूहिक उत्सवों और कठोर शारीरिक श्रम के दौरान मनोरंजन के लिए किया जाता था।[5] सचमुच वीणा-वादन, मृदंग-वादन, मन्त्र-उच्चारण इत्यादि मंदिरों के ही लिए थे। प्राचीन समय में शास्त्रीय संगीत मंदिरों तक ही सीमित रहने के कारन जनसाधारण के आनंद के लिए लोक-संगीत का विकास प्रारम्भ से ही रहा और इसका सम्बन्ध वर्ण व्यवस्था के अनुसार असुरों के संगीत पर आधारित रहा।

शास्त्रीय संगीत का जन्म विशेषकर स्वतः सुख के लिए हुआ था। इसी कारण यह संगीत, शास्त्र के बंधन में बांधा गया। मुग़ल काल से इसका जनसाधारण के मध्य में आना शुरू हुआ। मुगलों ने शास्त्रीय संगीत को ऊपर उठाने में बहुत मदद की। शास्त्रीय संगीत का विकास मंदिरों में हुआ था और यह अधिकतर ब्राह्मणों तक सीमित था। किंतु मुगल काल में शास्त्रीय संगीत को राज-दरबारों में स्थान मिला और यह संगीत धीरे-धीरे आम जनता के बीच भी लोकप्रिय हुआ। मुगलों के दरबार में शास्त्रीय संगीत को विशेष सम्मान मिला और इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत का प्रभाव बढ़ता गया, लेकिन लोक संगीत का महत्व ग्रामीण और सामाजिक जीवन में बना रहा।[6] मुगल-काल से ही शास्त्रीय संगीत को राज-दरबार में स्थान मिला, अन्यथा वह ब्राम्हणों तक ही सीमित रहता। भारतीय लोक संगीत का जो रूप आज पाया जाता है, वह इतना ही पुराना होगा, जितनी पुरानी हमारी आजकल की बोल-चाल की भाषा। पाली के जो गीत मिलते हैं उनका संगीत किस प्रकार का रहा होगा, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। इधर, शास्त्रीय गायन को आज किसी भी ढंग से किसी भी प्रकार की भाषा में अच्छी तरह गा सकते हैं तथा इसकी प्राचीनता का प्रमाण भी पाया जाता है यह विचारणीय विषय है कि लोक-संगीत का विकास शास्त्रीय संगीत से हुआ अथवा शास्त्रीय संगीत का विकास लोक-संगीत से हुआ |

निष्कर्ष

लोक संगीत और वर्ण व्यवस्था के बीच घनिष्ठ संबंध भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक संरचना को दर्शाता है। वर्ण व्यवस्था ने न केवल समाज में कार्य विभाजन को निर्धारित किया, बल्कि संगीत और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों पर भी गहरा प्रभाव डाला। उच्च और निम्न वर्णों के संगीत में स्पष्ट अंतर भाषा, वाद्य यंत्र और गायन शैली के आधार पर दिखाई देता है। यह अध्ययन इस बात को उजागर करता है कि कैसे भारतीय समाज की सामाजिक संरचना ने उसकी सांस्कृतिक धरोहर को आकार दिया और लोक संगीत को विभिन्न वर्गों की भावनाओं और विचारों का प्रमुख माध्यम बनाया।

संदर्भ

शर्मा, डॉ. रघुनंदन. (1998)भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत प्रकाशन, पृष्ठ संख्याः 45-47.
त्रिपाठी, डॉ. रामानंद. (2001) श्रीकृष्ण और भारतीय संगीत गीता प्रेस, पृष्ठ संख्याः 112-115.
पांडे, राजेश कुमार. (2005) भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रभाव, वाणी प्रकाशन, पृ. 102-110.
चौधरी, रमेश. (2014) भारतीय लोक संगीत और समाज, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 120-130.
शर्मा, विद्याधर. (2010) भारतीय लोक संगीत की परंपराएं, प्रकाशन संस्थान, पृ. 88-95.
खान, प्रो. अमनुल्लाह , मुगलकालीन. (2002) दरबार और संगीत,उर्दू अकादमी, पृष्ठ संख्याः 136-140.